बी. ए. भाग - 1
हिन्दी - प्रतिष्ठा

रमेश कुमार यादव
हिन्दी विभाग
डी. के. कॉलेज डुमराँव

पंत के प्रकृति वर्णन की विशेषताओं का उद्‌घाटन कीजिए ?

'अथवा'

'पंत को प्रकृति का सुकुमार कवि कहते है' इस कथन की समीक्षा कीजिए ?

सुमित्रानन्दन पंत का काव्य- विकास अन्त-र्मुखता से निरन्तर बर्हिमुखता होने का इतिहास है। जिस प्राकृतिक परिवेश मे उनका जन्म और पालन पोषण हुआ वह स्वयं कविता से कम आकर्षण और लुभावना नहीं है। उनकी जन्मभूमि कौसानी ने उनके मन में सौन्दर्य और प्रेम का जो बीज वपन किया वह समय पाकर 'पल्लव' के रूप में पल्लवित हुआ। इस प्रभाव के कम होते ही उनपर मार्क्स और गाँधी का प्रभाव पड़ता है और उसके फलस्वरूप उनकी कविता भी दूसरी दिशा की ओर मुड़ जाती है। उनके जीवन को तीसरा मोड़ देता है अरबिन्द दर्शन। 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण धूलि' तथा उनके बाद के काव्य इसी दर्शन को प्रतिफलित करते हैं। इन मोड़ो से गुजर कर ही उनकी कविता का समाकलन हो सकता है।

अंगरेज कवि बायरन ने कहा है, "मै मानव से कम प्यार नहीं करता, किन्तु प्रकृति से उससे भी अधिक प्यार करता हूँ" (आई लव मैन नॉट द लेस बट नेचर मोर)। पंत में भी यही बात सत्य प्रतीत होती है। पंत ने कहा भी है, "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति - निरीक्षण से मिली है,

जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण का ही प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति गंभीर आश्चर्य की भावना पर्वत की तरह निश्चल रूप में अवस्थित है।"

इसी स्थायी आकर्षण के कारण कवि प्रारंभ में ही काया की माया की अपेक्षा 'द्रुमों की छाया' और 'प्रकृति की माया' में अत्यधिक अनुरक्त था 'मोह'। कविता की पंक्तियाँ देखें—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति की भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन

प्रकृति माटी से अधिक प्रिय लगती थी जिस कारण अपनी प्रारंभिक कविताओं में पंत ने ऐसा कहा था। उस यम की काव्यकृति 'वीणा' में इसी कारण प्रकृति के प्रति जिज्ञासा, आश्चर्य-भावना और लालसा व्यक्त हुई है। सरस, मृदुल और कोमल प्रकृति को पंत ने सरल, मृदुल और कोमल स्वरों में ही अभिव्यक्त किया है। मातृविहीन कवि के लिए प्रकृति ही 'काव्य पाठशाला' और 'काव्य गुरु' थी।

'प्रथम रश्मि' में बाल विहंगिनी की अंत: शक्ति के प्रति कवि की भोली आस्था प्रकृति को 'मानवीकरण' के रंगो से संजीव बना देती है। प्रकृति नवजीवन नवीन गति और स्फूर्ति का स्रोत बनकर खड़ी हो जाती है—

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि, डोले मधु बाल
स्पन्दन, कम्पन और नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना।

पंत प्रकृति के चित्रों में जैसे प्राण भर देते हैं। 'पर्वत-प्रदेश मे पावस' रचना आद्यान्त प्रकृति- सौंदर्य और प्रकृति व्यापारों की एक सचेतन प्रतिकृति बन गई है—

उड़ गया अचानक लो भूधर
फड़का अपार पारद के पर!
रव शेष रह गये है निर्झर!
है टूट पड़ा भू पर अम्बर!

आरंभ में प्रकृति के प्रति पंत का वैसा ही आकर्षण दिखाई पड़ता है जैसा अंगरेज कवि वुड्सवर्थ में था। दोनों में भावना की समानता के साथ, यदि कोई अन्तर है तो यही कि वुड्सवर्थ का प्रकृति-प्रेम सार्वत्रिक और सार्वदेशिक था और पंत प्रकृति के सुकोमल और सुकुमार रूप के ही अधिक उपासक थे। वुड्सवर्थ के लिए प्रकृति अपने सहज स्वरुप-सत्ता में ही पूज्य थी— वह चाहे उसका ग्रामीण

या निचार रूप हो अथवा 'डैफोडेल्स' के फूल हों। पंत ने 'परिवर्तन' जैसी कुछ रचनाओं में प्रकृति के उग्र और भयानक रूप का भी साक्षात्कार कराया है और 'ग्राम्या' की रचनाओं में प्रकृति के अनगढ़ और नैसर्गिक रूप को भी उद्घाटित किया है, पर उनकी मूल कवि-आत्मा प्रकृति के सुकुमार, कोमल और मृदुल रूप पर ही न्योछावर है। यह जरूर है कि पंत ने वुर्ड्सवर्थ जैसे कवियो से भी सीखा था।

पंत में प्रकृति उद्दीपन, आलंबन, अभिव्यक्ति, माध्यम और विभिन्न अलंकारो के रूप में भी आयी है किन्तु 'गुंजन' काल से ही कवि में एक नया स्वर उभरता हुआ सुनाई पड़ने लगता है। वह पारम्परिक पृष्ठभूमि निर्माण, उद्दीपन, आलंबन और अप्रस्तुतात्मक अलंकरणों के स्तर से उठकर प्रकृति को मानव की संगिनी और जीवन के रस-सौंदर्य की स्रोतस्विनी बना डालता है। यहाँ प्रकृति मिथ्या या नश्वर नहीं वरन् मानव के जीवन-सौंदर्य और आन्तरिक आनंद की विधायिका बन गई है। वह सुख-दुःख में मानव के साथ हँसती-रोती और गाती-नाचती दिखाई पड़ती है।

पंत का प्रकृतिवाद उस जीवनवाद का ही एक अंग बन गया है, जो सामंती संस्कृति की निष्प्राणता की वेदी पर छाया-कवियों के मानस में नवीन रूप मे प्रस्फुटित हुई थी। जब लोक के प्रति प्रेम होगा तो मानव के प्रति प्रेम होगा और जब मानव की चिरसंगिनी प्रकृति के प्रति प्रेम की एक नयी दृष्टि अवश्यमेव उदित होगी।

पंत की यह बहिर्मुखता उन्हें मानव-सत्ता, प्रकृति सत्ता और मानवीय संस्कृति के सूक्ष्म संचरणों तक उठाती गई है। कवि का सांस्कृतिक स्वर कभी वैयक्तिक नहीं होता है, वह सदैव लोकपरक मानवमुखी होता गया है। फलतः वह 'जग के उर्वर आँगन में 'ज्योतिर्मय जीवन' बरसने का आकांक्षी हो जाता है। संध्या के प्रति 'जीवन का श्रमताप हरो हे' की वंदना मुखर हो उठती है। लहरों में मानव-स्थिति के बिम्ब प्रतिबिम्बित हो उठते हैं,—

फिर जन्म मरण को हँस-हँस कर
हम आलिंगन करती पल-पल
फिर-फिर असीम में उठ-उठकर
फिर-फिर उसमें होकर ओझल

प्रकृति संबंधी कवि के दृष्टिकोण का अन्तिम सोपान वहाँ से प्रारंभ होता है जहाँ प्रकृति कवि के आध्यात्मिक चिन्तन के सत्यासत्य का माध्यम बन जाती है। महर्षि अरविन्द का 'भगवान दर्शन' और उनका 'चेतना का अन्त-विकास' का सिद्धान्त कविवर पंत का अंतिम जीवन-दर्शन रहा है। यहाँ पहुँचकर कवि की प्रकृति के प्रति जन्म जात पिपासा एक शांत सरोवर की तृप्ति पा लेती है।

'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण-धूली', तथा रजत शिखर आदि कृतियों का प्रकृति-चित्रण इसी दृष्टि का प्रतिफलन है। यहाँ आकर प्रकृति आध्यात्मिक अनुभूतियों की चित्र-स्थली बनकर जगमगा उठी है। इसके जड़त्व में 'भागवत चेतना' मुस्कुरा उठी है। प्रारंभ को विस्मय की रहस्यभावना से युक्त प्रकृति अब

कवि की भोक्ता भूमि पर आ गई है।

पंत की प्रकृति ने सौकुमार्य, सौन्दर्य तथा परिष्कृति दी है। इनका प्रभाव उनकी सांस्कृतिक अभिरुचियों, रहन-सहन, भाषा-शैली आदि सभी पर पड़ा। उनका व्यक्तित्व अनघड़ न होकर संस्कारित है। जीवन के वैविध्य से होकर उन्हें नहीं गुजरना पड़ा है। उनकी कल्पना इसी कमी को पूरा करती है।

अतः निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि पंत की प्रकृति साधना केवल एक काव्य भंगिमा ही नहीं, वरन् जीवन जीवन-जगत् संबंधी उनके पूरे मानसिक विकास और कवि मनस्कता की क्रमशः विकासमान समग्र व्यक्तित्व-यात्रा है।

रमेश कुमार यादव
हिन्दी – विभाग
डी. के. कालेज, डुमराँव
बक्सर (बिहार)